कविता संग्रह

पलामू की धरती पर

- अभिजीत राय

पलामू की धरती पर

(कविता-संकलन)

अभिजीत राय

प्रकाशक

प्रतिभा प्रकाशन

पटना-1

प्रकाशक :
प्रतिभा प्रकाशन
पटना–1

Palamu ki Dharti Par by abhijeet roy
प्रथम संस्करण, 2006
द्वितीय संस्करण, 2015
तृतीय संस्करण, 2017
प्रकाशक : प्रतिभा प्रकाशन, हरिओम कॉमर्शियल कम्पलैक्स
एक्जीबिशन रोड चौराहा, पटना–1
e-mail : pratibhaprakashan@rediffmail.com
मुद्रक : शर्मा इन्टप्राईजेज, लंगर टोली, पटना–4
मूल्य : चालीस रूपये मात्र

परम आदरणीय साथी दघीची राय को समर्पित,
जिन्हें सरकारी गुण्डों ने हमसे सदा-सदा के
छीन लिया, पर हमारे आंखों में बसे
उनके सपनों को कभी नहीं
छीन सकता.

प्रकाशक की ओर से -

अर्द्ध-सामंती और अर्द्ध-औपनिवेशिक चरित्रवाले इस देश में दलाल पूंजीपति और इसका खेबनहार शासक वर्ग अपनी पूरी ताकत से इस देश और इसके वासियों को पूरी तरह से लूटने और अपने विदेशी लूटेरों के साथ मिलकर लूट में हिस्सा पाने के लिए जान लगाये हुए है. ठीक इसी तरह इस देश की जनता भी अपने देशी व विदेशी लूटेरों तथा इस देश के सामंती ताकतों के खिलाफ अपने प्रतिरोध के हर सम्भावित तरीकों को अपनाते हुए लगातार संघर्ष कर रही है. इस प्रक्रिया में सम्भावित एक रास्ते हथियारबन्द संघर्ष का भी है.

प्रस्तुत कविता संकलन की पृष्ठभूमि इसी ओर इशारा करती है. कहा जाता है कि हथियारबन्द दुश्मनों का मुकाबला भी ठीक हथियारबन्द होकर ही किया जा सकता है.

उम्मीद की जाती है कि प्रस्तुत संकलन पाठकों को अच्छा लगेगा और इसी उम्मीद के साथ यह संकलन पाठकों के सामने प्रस्तुत है.

प्रकाशक

दो शब्द

शासक वर्ग शोषण-दमन की चक्की को अनवरत् जारी रखने के लिए जिस प्रकार पुलिस-सेना का इस्तेमाल कर रही है, अपनी हथियारबंद ताकतों का इस्तेमाल जिस प्रकार देश की विशाल आम पीड़ित जनता के खिलाफ कर रही है, निश्चय ही यह एक बड़े जनान्दोलन को निमंत्रित कर रही है-शायद गृहयुद्ध को. प्रस्तुत कवितायें जनता के बीच पनप रहे इसी गुस्से का प्रतिनिधित्व करता है.

प्रस्तुत कविता संग्रह देश के विभिन्न भागों में चल रहे क्रान्तिकारी हथियारबन्द जनान्दोलनों से प्रेरित है जो अनेक जनवादी पत्र-पत्रिकाओं में समय के विभिन्न अन्तरालों में प्रकाशित हो चुकी है. यहां केवल इसे एक संग्रहित रूप दिया गया है.

मैं उन साथियों को धन्यवाद करना चाहूंगा जिनके सानिध्य ने मुझे चीजों को देखने और समझने हेतु नया दृष्टिकोण दिया और प्रोत्साहित किया. खासकर साथी अमृत ने जो प्यार दिया उसका मूल्य मैं कभी नहीं चुका सकता.

– अभिजीत राय

अक्टूबर, 2006

द्वितीय संस्करण

प्रस्तुत कविता संकलन के द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करते हुए जहां अपार हर्ष हो रहा है, वहीं पाठकों की मिली प्रतिक्रियायें भी काफी उत्साहवर्द्धक रही है. यही कारण है कि इस काव्य संग्रह को पुनः प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है. इन संग्रहित कविताओं को वेब-जाल पर भी डाला गया है, जहां से भी पाठकों की काफी रोचक और उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रियायें प्राप्त हुई है. प्रस्तुत है पाठकों की कुछ प्रतिक्रियायें :

... शुभकामनाएं, बहुत ही मार्मिक रचना. मां !/अगर मेरा बेटा जन्म ले, तो बतलाना उसको/उसके बाप के बारे में,/कि किस तरह उसका बाप मरा था./कि अन्तिम समय मैं उसे बेतरह याद कर रहा था.

- रेखा जोशी

... बहुत सुन्दर ... काश ! सभी सपूत मां की लाज ऐसे ही और सब कुछ सह के भी मां भारती का शीश गर्व से ऊंचा रखे ... हां जरूर कल सूरज निकलेगा, अद्‌भूत रोशनी लिए, शुभकामनाएं।

- सुरेन्द्र कुमार शुक्ल 'भ्रमर'

... आपकी ये कविता कल से पढ़ रही हूं और जब भी मौका मिल रहा पढ़े जा रही हूं ..., लगता ही नहीं ये लिखा गया है, लग रहा है जैसे आपने इसे जिया है. हरेक शब्द यहां रूपाकार है. वेदना जैसे हरेक शब्द मेरे नस-नस में समा गयी है ...

वाह ... इसे कहते हैं क्रांति का बिगुल .../ जोश और होश जगाती रचना के लिए बहुत बधाई आपको.

- महिमा श्री

आज ... इस रचना 'मां' को पढ़ते हुए बहुत कुछ मन में कौंध गया. वस्तुतः यह रचना मात्र वह नहीं कहती जो हम पढ़ रहे हैं.

प्रिज्म का होना आश्वस्त करता है. उस प्रिज्म से होकर गुजरती किसी उद्‌भ्रांत किरण का अनायास विदीर्ण होकर विस्तृत हो जाना चकित तो करता है,

परन्तु उस एकाकी जिये जा रही किरण के मंतव्य सरीखे अवयवों से विचार-विशेष को समर्पित बालक सायास खेलने लगे तो किरण के अवयवों का रंग ... आह ... ऐसा आखिर होता क्यों है ? और ऐसा अक्सर होता है !

आपको किसी रूप में खड़ा होता हुआ देख रहा हूं. एक उत्कट सम्भावना मेरी बांयी ओर से निकलती हुई साफ दीख रही है और हम नि:शब्द से हैं.

- सुरेन्द्र पाण्डेय

बहुत ही मार्मिक व हृदयग्राही रचना है ... दु:ख तो ये है कि इन कुर्बानियों के किस्से बाद में जन्म लेने वाले बेटों को सुनाये तो गए परन्तु मां के दु:खों का अभी भी पूरी तरह से निवारण नहीं हुआ.

- सरिता सिन्हा

एक सच्चे क्रांतिकारी की आवाज, सुन्दर रचना.

- ब्रिज भूषण चौबे

मर्मस्पर्शी और हृदयविदारक भावों से परिपूर्ण काव्य के लिए हार्दिक बधाई .

- संदीप द्विवेदी 'वाहिद काशीवासी'

मार्मिक रचना. भगत सिंह और उनके साथियों के तरफ ईशारा कर गई.

- आशीष यादव

... आपकी कविता ब्लैक होल की तरफ इशारा कर रही है. भाव भंगिमा बहुत ही मर्मस्पर्शी है.

... बधाई आपको.

- ई. गणेश जी 'बागी'

वाह ... आपकी लेखनी को सलाम. कितना मर्मस्पर्शी लिखा है आपने जीवन की एक कठोर सच्चाई.

- राजेश कुमार

''लाल सूरज कल जरूर उगेगा मां'', आशा का बना रहना अच्छा होता है. साधुवाद !

- अरूण कान्त शुक्ला

''अगर मेरा बेटा जन्म ले, तो बतलाना उसको,/उसके बाप के बारे में,/कि किस तरह उसका बाप मरा था./कि अन्तिम समय मैं उसे बेतरह याद कर रहा था.'' अत्यन्त मार्मिक रचना. साधुवाद आपको इस कथ्य प्रधान काव्य प्रस्तुति पर.

– अभिनव अरूण

कड़वा सच यही तो है.

– मुकेश कुमार सक्सेना

उत्कृष्ट व्यंग्य, निशाने पर चोट करता है ... बधाई ...

– सरिता सिन्हा

क्या शानदार चुनौती है, बधाई ... सादर.

प्रदीप कुमार सिंह

''मैं अपनी आवाज हूं,/इसे तुम कोई भी नाम दो,/मैं ही भविष्य हूं /तुम्हारे आने वाली कल की कविता का.''

– प्रदीप कुमार सिंह कुशवाहा

''मैं भी सुनाता हूँ एक कविता,/भूख से बिलबिलाते लोगों के /हिंसक प्रतिरोध का./ मैं कवि नहीं, भुक्तभोगी हूँ./नहीं ! मैं तो निमित्त मात्र हूँ,/भूख से बिलबिलाते लोगों का/एक प्रतिनिधि मात्र हूँ...''

बहुत सुन्दर, प्रभावान ... हार्दिक बधाई आपको.

– अभिनव अरूण

... आज आपकी दो रचनाओं को देख गया. इस दूसरी रचना 'धूल' का इंगित दमित और राजनैतिक रूप से कुटिल मानस के पीड़ित हैं. व्यथित स्वरों को आपने मुखर किया. साधुवाद.

– सौरभ पाण्डेय

इसी के साथ हम अपने पाठकों के सामने इस कविता संकलन के द्वितीय संस्करण को प्रस्तुत करते हैं.

– अभिजीत राय

अक्टूबर, 2015

तृतीय संस्करण

प्रस्तुत कविता संकलन तृतीय संस्करण में कोई अतिरिक्त संशोधन नहीं किया गया है. महज कुछ पृष्ठों को सजाने व संवारने के अलावा और कोई बदलाव नहीं किया गया है.

– अभिजीत राय
मार्च, 2017

अनुक्रमणिका

1.	कविता	1
2.	धूल	3
3.	मुठभेड़	5
4.	बीज	7
5.	मां	9
6.	खामोश	12
7.	फिर वही गीत, संघर्ष के बीच	15
8.	गुरिल्लों की रातें	19
9.	पलामू की धरती पर	23
10.	और अन्त में ...	27

कविता

कविता –
कवि कहते हैं,
होना चाहिए प्रेम प्रतिज्ञा
अपने महबूब के प्रति.
वर्णन हो,
उसके अंग-प्रत्यंग का.
नख से शिख तक का.
कलात्मकता निहित हो,
उसके सुखमय आलिंगन में !

परन्तु,
कविता एक परम्परा भी है,
मेहनतकशों के प्रति प्रतिबद्धता का भी है.
जहां यह सब नहीं होता.

कविता कल्पना में नहीं
थाने के लॉक-अप में भी हो सकता है,
जहां थानेदार की बूट
लिखती है कविता,
हमारे कपाड़ पर.
जहां गर्दन तोड़कर लुढ़का दी जाती है
और बन जाती है कविता.

यह शासक वर्ग –

रोज लिखती है कविता,
भूख से बिलबिलाते लोगों के मूंह में
रायफल की नाल ठूंस कर.

आईये -
मैं भी सुनाता हूँ एक कविता,
भूख से बिलबिलाते लोगों के
हिंसक प्रतिरोध का.

मैं कवि नहीं, भुक्तभोगी हूँ.
नहीं ! मैं तो निमित्त मात्र हूँ,
भूख से बिलबिलाते लोगों का
एक प्रतिनिधि मात्र हूँ...

कवि चिल्लाते हैं -
यह कविता नहीं है...
पर,
चीखने दो उसे.
नहीं चाहिए मुझे उसका नपुंसक समर्थन.

मैं तो भुक्तभोगी हूँ,
मैं अपनी ही आवाज हूँ,
इसे तुम कोई भी नाम दो,
मैं ही भविष्य हूँ -
तुम्हारे आने वाली कल की कविता का.

धूल

सदियों से शोषित-दमित समाज में -
तुम्हारे पास स्पष्ट समझ है,
एकदम साफ रास्ता है -
लूट के घिनौने तंत्र को बरकरार रखने में !
लूट के लिए खून बहा देने में !!
लूट के खिलाफ उठी हर आवाज को कुचल डालने में !!!

हैरत तो यह है
कितनी आसानी से सफल हो जाते हो तुम,
अपने नापाक इरादों में !!!!

सच ! तुमको कितना मजा आता है-
अस्मत लूटी औरतों की दर्दनाक मौत में !
लोगों को आपस में ही लड़ा डालने में !!
उनके बीच में ही संदेह का बीज पनपा डालने में !!!
तुम कितनी आसानी से सफल हो जाते हो,
लोगों को बरगला डालने में !!!!
(2)
कुछ बेकार होता,
गर न होती तुम्हारे पास मजबूत राजसत्ता,
निजी सम्पत्ति का पहरेदार.
लोगों के शरीर से आखिरी बूंद तक-
निचोड़ डालने के लिए.

परन्तु, तुम्हारा सब कुछ बेकार होता-
गर लोगों के विवेक-बुद्धि को तुमने
ढ़क न दिया होता
अज्ञानता-अन्धविश्वास-धर्म जैसी
धूल की मोटी परत से, औ'
हजारों साल से जमी धूल को,
साफ करने खातिर उठी हर आवाज को,
हर हाथ को,
कुचल न डालते तुम-
अपने पाश्विक दमन से...
(3)
पर हमारी यह कुचली आवाज,
खून से लथपथ हमारे टूटे हाथ,
सक्षम हैं,
लोगों के विवेक-बुद्धि पर पड़ी,
इस धूल को साफ कर,
तुम्हारे विरूद्ध विद्रोह कर डालने में !!!

मुठभेड़

ताजगी का आलम,
बसंत की बौछार,
कोयल की कुहूक,
मंजरों की मादक खूशबू,
चांदनी बहती रात,
मनोहर एकान्त क्षण.

परन्तु,
बेचैन-दुःखी-निराश,
वह नौजवान.
इन्तजार करता किसी के आने का.
शायद किसी बहार का.
प्रेम का मारा,
वह बिचारा.

टिक....टिक...
समय बीतती रही,
पर लगे पंक्षी की तरह.
जैसे कोयल की कुहूक ...

तभी,
फिजा में गूंजी,
पत्तों की सरसराहटें...

चेहरे पर जमाने भर की खुशियाँ समेटे,
मुड़ा ही था वह नौजवान
कि-
तीन गोलियाँ एक-एक कर
सीध दिल को छेदती गुजर गई.
(2)
सुबह अखबार के पन्नों पर
छायी थी खबर -
'एक खूंख्वार नक्सलवादी मारा गया,
पुलिस मुठभेड़ में.'

बीज

वह मुझसे पूछ रही थी,
'क्या कर रहे हो ?'
मैंने कहा, 'अपने खेतों में
क्रांति का बीज बो रहा हूँ.'
वह हंसी और बोली,
'छोड़ दो गर तुम इसे,
बहुत प्यार करूंगी मैं तुझे.'
मैं कुछ न बोला.
लगा रहा धुन में अपने.
वह बोली, 'पागल है'
औ' नाक सिकोड़ती चली गई.
(2)
पुनः
उम्दा पोशाक में
आये एक सज्जन.
मुझसे पूछा.
बगैर सर उठाये,
वही जबाव दुहरा दिया.
वह थोड़ा गंभीर हुए थे
फिर बोले, 'तुम मेरे रिश्तेदार हो,
इसे छोड़ दो तुम गर
रिश्ते टिके रहेंगे हरदम.'
मैं कुछ न बोला.

उन्होंने घृणा से मूंह फेर
राह अपना पकड़ा.
(3)
थोड़ी देर में आई एक पुलिस,
झटकारते डंडा अपना.
मुझे डराया-धमकाया-समझाया
और कहा, 'बंद करो,
खेतों में क्रांति का बीज बोना.'

मैंने कहा, 'उग सकता है अब इस खेत में,
क्रांति का ही पौध.
वैज्ञानिकों ने बताया है.
व्यवहार में सीखा है.'

उसने मुझे देशद्रोही कहा और
मुझे पीटने लगा.
मेरा खून खेतों में गिरने लगा.

गिरते-गिरते मैंने देखा-
खून से भींगी जमीन पर
बहुत तेजी से उग रहे थे,
क्रांति के पौधे.

मां

मां !
मैंने खाये हैं तुम्हारे तमाचे अपने गालों पर,
जो तुम लगाया करती थी अक्सर,
खाना खाने के लिए.

मां !
मैंने भोगे हैं अपने पीठ पर,
पिताजी के कोड़ों का निशान,
जो वे लगाया करते थे बैलों के समान.

मां !
मैंने खाई है अपने हथेलियों पर,
अपने स्कूल मास्टर की छड़ियां,
जो होम वर्क पूरा नहीं करने पर लगाया करते थे.

पर मां !
मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ
आखिर क्यों लगी है मेरे हाथों में हथकड़ियां ???

जानती हो मां ?
उन्होंने मुझे थाने लाकर उल्टा लटकाया.
अनगिनत डंडे लगाये मेरे पैरों पर.
उन्होंने सुईयां चुभोई है मेरे शरीर में.

वे मुझसे पूछ रहे थे-
उन साथियों का नाम मां,
जिन्होंने तुम्हारी लाज बचाई थी, उस समय
जब मैं और पिताजी घर से बाहर थे,
औ' घरों में घुस आये थे गुण्डे.
मां !
पुलिस ने मुझे इसीलिए गिरफ्तार किया है कि-
मैं बताऊं उनलोगों का नाम.

तुम्हीं बताओ मां,
मैं कैसे उन लोगों का नाम
अपने जुवां पर लाता ?

मैं बेहोश हो गया था मां.
न जाने कितने सारे प्रयोग किये थे,
मेरे शरीर पर.
शायद करंट भी दौड़ाया था मेरी नसों में.

मां ! मुझे अफसोस है,
मैं आखिरी बार तुमसे नहीं मिल सका.
मैं आखिरी सांस गिन रहा हूँ मां.
मैं अपने विक्षत कर दिये गये शरीर को भी,
नहीं देख पा रहा हूँ.

पर मां !
अब मैं चैन से मर सकूंगा.

लाल सूरज कल जरूर ऊगेगा मां.
तब लोग गायेंगे मेरे भी गीत.
कह देना तुम मेरे साथियों से-
मैंने अपने जुबां पर नहीं आने दिया है,
अपने पवित्र साथियों का नाम.
कि पुलिस मुझसे कुछ भी हासिल नहीं कर सकी,
कि मैंने बट्टा नहीं लगने दिया है,
उनके पवित्रतम आदर्श पर.

(3)

मां !
अगर मेरा बेटा जन्म ले,
तो बतलाना उसको,
उसके बाप के बारे में,
कि किस तरह उसका बाप मरा था.
कि अन्तिम समय मैं उसे बेतरह याद कर रहा था.

खामोश

यहां क्रांति की तैयारी चल रही है-

कोनों में दुबक कर,
वे जोर से गरजते हैं.
नारे की गरजना से,
थरथराने लगता है सामने वाला.
वे अपने मूंह में तोप फिट कर लिये हैं,
गरजने के लिए.

चुप रहो !
वे क्रांति की तैयारी कर रहे हैं.
देखते नहीं, वे अपना रायफल बंधक रख दिये हैं,
पत्नी के गहने जो खरीदने हैं.

अरे वो देखो, वे कहीं जा रहे हैं.
चुप, इतना भी नहीं समझता,
मंत्री जी की अगुवानी में हैं.
अपने बेटे को विदेश जो भेजना है !
कल तक गरीब थे
-तो रहा करे.
आज सम्पन्न हो गये हैं, और अब-
क्रांति के नायक वे ही हैं.
धीरे बोलो, वे क्रांति की तैयारी कर रहे हैं.

(2)

अरे वो देखो !

सर पर बोझा लिये जा रहा है,

भुक्खड़ों-कंगालों की टोली.

अरे, ये तो धन का बोझा है...

फलां बाबू के खेत का है...

...बड़े ही गरीब आदमी हैं,

मात्र चौबीस हजार एकड़ ही जमीन है...

और ये नीच-पापी उस 'गरीब आदमी' को लूट लिया !!!

जुलुम हो गया...

...घोर कलयुग आ गया है.

अरे वो देखो,

उसके हाथ में-

तीर-धनुष है, भाले भी हैं.

बाप रे ! बन्दुकें भी चमचमा रही है.

हाय ! हाय !!

ये बहुत ही खतरनाक बात है

भुक्खड़ों-कंगालों के हाथों में इस चीज का होना...

(3)

अरे, वो देखो

वे पुलिस को बुला रहे हैं.

...खामोश !

वे क्रांति की तैयारी कर रहे हैं.

...अब वे पुलिस के साथ,

इन भुक्खड़ों-कंगालों की लाशें गिन रहे हैं.

...पोस्टमार्टम रिपोर्ट क्या है ?
अरे, ये गोली लगने के बहुत पहले
भूख से मर चुके थे.
उसकी औरतें मर गई पुलिस बलात्कार में.
(बड़ी कमजोर होती है ये औरतें)
बचे-खुचे पुलिस हिरासत में मार दिये जायेंगे.
(4)
वे बहुत खुश थे.
उन्होंने तत्परता से आज एक
'गरीब' की रक्षा की.
'भुक्खड़ों' को मजा चखा दिया.

अब क्रांति की तैयारी अच्छी होगी.
अगले चुनाव में,
वोटों की फसल खूब कटेगी.

फिर वही गीत, संघर्ष की बीच

कॉलेज के गलियारों में –
लड़कियों के पीछे भागते,
बेंच थपथपाते,
क्लास में उछलते,
सहपाठियों के साथ मजाक करते,
जब कभी मैं गाता,
'ये सुहाना सफर ...'
तो अनायास भी 'सुहाना सफर' का अहसास नहीं हुआ.

परन्तु आज जब मैं,
सर्वथा ही नई राह का राही बन चुका हूँ,
तब ये गीत सहसा ही मेरे होंठों पर आ जाते हैं,
औ' मेरे अन्तरतम् तक को उद्वेलित कर जाते हैं.
पहाड़ों के बीच से–
नीचे की ओर गिरते झरने की पानी में बैठकर,
अपने साथियों के साथ स्नान करता मैं.
पास ही में थर्टी-कार्रबाईन रायफल रखे,
गोलियों के बंडलों को निहारता हूँ.
तभी,
साथियों की किलकारियों के बीच से,
ड्यूटी पर तैनात संतरी साथियों की ओर से,
आती है गंभीर आवाज.
पुलिस के आने की सूचना.
तमाम साथी सतर्क हो जाते हैं.

ड्यूटी पर तैनात साथी गोली दागते हैं.
कमांडर का कॉशन.
तय हो गया,
दुश्मनों पर प्रहार करना.

हम तेजी से अपने समान समेटते हैं.
पीठ पर पीठु लगाते हैं.
कमर में गोलियों का बंठल बांधते हैं.
रायफलों की बोल्टें चढ़ा ली है साथियों ने.
गोलियों की बौछार –
सभी साथी अपने-अपने पोजीशन की ओट लेते हैं.
स्वचालित रायफलों की तड़-तड़ के बीच,
सहसा ही होठों पर आ खड़ा होता है यह गीत.
थर्टी-कार्रबाईन उठाये मैं भी लेटा हूँ अपने पोजीशन में.
शत्रु को और नजदीक आने दे रहा हूँ.
कमांडर के कॉशन के साथ ही,
दबती है ट्रिगर.
निकलती है गोलियां.
कान बहरे होने लगते हैं,
लड़कियों की मधुर किलकारियों से नहीं,
रायफलों की चीत्कारों से.
फिजा में बारूद की गंध समा गई है.
पुलिस अब और नीचता पर उतर आई है.
गोलियों के साथ ही,
गंदी गालियों की बौछार कर रही है.
घृणा और बढ़ जाता है.

पत्थर-खाई का कुछ भी पता नहीं चलता.
कांटे-झाड़-झांखड़ आंखों से ओझल हो जाते हैं.
दीखती है तो सिर्फ घृणित हत्यारी पुलिस.
पिस्टन की भांति उठती-गिरती,
बौखलाई-बदहवास.

एक साथी को गोली लग गई.
परन्तु चेहरे पर घबराहटें नहीं दीखती.
प्रिंसिपल के क्लास में आने और डांट पिलाने
या, उन तक शिकायत पहुंच जाने जैसी घबराहटें,
न जाने अब कहां विलीन हो गई है ?

न जाने कैसे रायफलें स्वतः ही चलने लगती है,
दूने-तीने-चौगुने रफ्तार से.
पुलिस के खिलाफ घृणा और व्यापक हो गया है.
कलम चलाते वक्त उंगलियों में दर्द भी होता था,
पर, यहां वह भी नहीं होता.
नहीं होता, जरा भी नहीं.
विश्वास मानिये,
चलते-चलते दुखने वाली टांगों में भी,
दर्द का नामोनिशान तक नहीं ।
हमला - तेज हमला.
साहस - और साहस.
दुस्साहस तक जाते हम.
आक्रामक होते.
पहले पोजीशन से कितने ही आगे बढ़ गये हम.

सहसा सामने दीखती है–
चिदिंयों की भांति उड़ती पुलिस.
उलटे मूंह के बल.
बदहवास पुलिस भाग रही है.
जहां तहां गोली दाग रही है.
खदेड़ रहे हैं हम ...
मर चुके पुलिस के शव के पास से
उनकी रायफलें, गोलियों को जब्त कर लिया है हमने.
और,
देखते हैं घृणा से,
प्राण बचा कर,
गिरती–पड़ती भागती पुलिस को.

कमांडर ने लौटने का कॉशन दिया है ...
अपने घायल साथी को,
कंधें पर उठाये.
आक्रोश से उबाल खाते,
लौटते हैं शेल्टर की ओर,
दुश्मनों से लड़ने का असली आनंद लिये ...

यही है हमारा सुहाना सपना ...
जिसे यहां रहे बिना
जाना नहीं जा सकता ...

गुरिल्लों की रातें

रात्रि का खाना खाकर,
जब आप,
बिछावन पर रजाई ओढ़े,
सोने का प्रयत्न कर रहे होते हैं,
तब भी ठंढ़ से कंपकंपाते होंगे आप.

तब ही-
दूर जंगलों-पहाड़ों में बिचरती,
हमारी गुरिल्ला सेनायें,
खाना खाकर किसी गांव में,
चल रही होती है-
जंगलों-झाड़ियों के बीच रास्ता बनाते,
किसी घने वृक्ष के नीचे,
रात्रि विश्राम के लिए.
(क्योंकि घेर लेती है पुलिसें अक्सर
गांवों को,
ताकि पलक झपकते खत्म कर दें,
हम गुरिल्ला सेनाओं को)

काफी ओस बनती है रातों में.
खेतों के बीच,
फसलों पर गिरी,
ओस की बूंदें,

भिंगो जाती है हमारे कपड़े और जूते.

घने वृक्ष के नीचे पहुंच जाने पर,
सोने खातिर जमीन साफ करते वक्त,
चुभ जाते हैं कांटे उंगलियों में,
ठिठुर जाती है उंगलियां,
ठंढ़ से.

बिछाते हैं पॉली-बैग.
हल्की और पतली चादरें,
ओढ़ लेते हैं हम.
या फिर-
घुस जाते हैं प्लास्टिक के गोल खोल में.
इस तरह शुरू होती है हमारी लड़ाई,
ठंढ़ी बयार से.
(घने पेड़ के नीचे ठंढ़ कम लगती है शायद)

साथियों की संख्या और
शेष बचे रात्रि के हिसाब से,
तय होती है संतरी ड्यूटियां.
रात्रि में बारी-बारी से,
तैनात होते हैं एक-एक साथी.
(ठंढ़ में खड़े होकर ड्यूटी निभाना,
काफी सख्त होता है.
पर दुश्मन से सुरक्षा हेतु,
बेहतरीन तकनीक है ये ड्यूटियां)

अक्सर ही हमारी रातें
बीतती है ठंढ़ से ठिठुरती,
इस आशा में कि -
अहले सुबह खूब तापेंगे आग
खूब ! खूब !!
और फिर लड़ लेते हैं हम ठंढ़ से.
(रात्रि में आग जलाना,
ठिकाने खोल देना है)

पुलिसें सुंघती चलती है,
कुत्तों की मानिंद.
गांवों को घेरकर,
जंगलों की खाक छानकर,
टुट पड़ती है हमारे खुल चुके ठिकानों पर,
अथवा मुखबिरों से नई खबर पाकर.

गांव की जनता को,
पीट डालती है पुलिसें.
धमकाती है,
दुर्व्यवहार करती है उनकी महिलाओं के साथ-
उनके कीमती गहने, कपड़े, समान, रूपये
छीन लेती है.
तोड़ डालती है टुट चुके घरों को,
घिनौनी गालियों के साथ.
पूछती है हमारे ठिकाने.
परन्तु जनता के बहादुर गुरिल्ले,

जनता के अभेद्य दुर्ग में,
बदलते रहते हैं अपने ठिकाने.
हर रात्रि खोज लेते हैं हम नये आशियाने.

भोर की लाली छाने से पहले ही
जग जाते हैं हम.
संतोष झांकते हैं खरगोश की तरह-
प्लास्टिक के गोल खोल से.
उपेन्द्र लगाते हैं पीठू.
सूरज झल्लाते हैं ठंढ़ से.
अमृत समेटते हैं अपना बिस्तर,
घासों-तिनके समेत.
और इसके साथ ही जग जाती है-
पत्तों की सरसराहटें,
झिंगुरों की झांय-झांय,
गीदरों की हांय-हांय,
और फिर चल पड़ते हैं हम सब-
रेलगाड़ी की डिब्बों के तरह,
रास्ते में बिछी घासों पर,
ताकि चुगली न कर दे जूतों के चिह्न.
खोल न दें हमारी जाने की राहें.

फसलों पर पड़ी ओस की बूंदें,
फिर भिंगोने लगती है हमारे जूते-कपड़े.
ठंढ़ी बहती बयार-
ठिठुरा जाती हमें.

नई सुबह की रक्तिम आभा,
अभिनन्दन करती है
और हम,
ठंढ़ से अकड़े शरीर को सेंकते हैं
लकड़ियों में धधकती लाल आग से -

पलामू की धरती पर

पलामू की छाती को चीरती,
रेल की ये पटरियाँ.
आदिवासियों-मेहनतकशों की नसों को निचोड़ती,
रेल की ये पटरियाँ.
कौन नहीं जानता ?
बॉक्साइट-कोयला-पत्थरों की खानें,
धरती की छाती को चीर कर निकालते,
नरभक्षी नरों के मुख का ग्रास बनते मजदूर.
अकालों की तहों मे दबे किसान.

छाती फट जाती है-
उन बच्चों को देखकर,
जिनकी आंखों से लूट लिये जाते हैं
खूबसूरत जिन्दगी के सपने.
मेरी अभिवादन करती उन लड़कियों की भी...

जरा हिलों नहीं कि टूट पड़ती है,
अर्द्ध-सैनिक बलों की बूटें और
डंक मारने लगती है उसकी स्वचालित रायफलें !
उसकी चित्कारों से 'त्राहिमाम्' शब्द भी,
कांप उठता है एकबारगी...

त्राहिमाम्...

बदल रहा है अब पाला.
कल तलक आम जनता के बीच रहती आयी,
अब शासक वर्ग की छाती में जा घुसी है.
परिस्थिति बदल गई है,
शासक वर्ग चिल्ला रहा है-त्राहिमाम् !!!
उसके स्वर्ग को लूटने जा रहे हैं हम.
(2)
पलामू की धरती पर-
देखता हूँ दधिची राय को.
तीन आंखों से झांकती है उसकी तनी छाती.
शायद त्रिदेव की तीनों आंखें उग आई है.
तभी त्राहिमाम् की चित्कार से-
फटने लगते हैं कान.

स्वचालित रायफल थामे कांप रहा है शासक वर्ग.
भागने का रास्ता पूछ रहा है राहगीरों से.
पागल हो गया है.
गलियों से भी आती है आवाज -
'इस पागल शासक वर्ग को,
पागलखाने रसीद करो'
गुंजायमान ! आसमान !!
(3)
ये क्या हो रहा है ???
ठहरों जरा,
समझ लेने दो.
अच्छा, किसी से पूछता हूँ.

वो देखो, कोई उधर जा रहा है.
अच्छा, चलो उसी से पूछ देखते हैं.

'ऐ भाई, रूको जरा !
कहां जा रहे हो तुम,
अपने हाथों में हथियार उठाये !!!'
टोको मत !
जनता के गुरिल्ले बेटों के,
शस्त्रागार भरने जाना है.
उस शस्त्र से जनता के लिए
स्वर्ग छीनने जाना है,
हड़प लिया है जिसको
चंद जमीन्दार, दलाल नौकरशाह पूंजीपतियों ने.

परन्तु सफल हो पाता वह
इससे पहले ही,
मुखबिर ने सूचित कर दिया था पुलिस को.
गिरफ्तार वह.

कील चुभोये पुलिस ने.
मजबूत हौसलों के साथ नारा लगाया,
'आऊंगा मां ! फिर आऊंगा,
अपने भाईयों के शस्त्रागार भरने.
एक असफलता पराजित नहीं कर सकती मुझे.'
(4)
वहां देखो-

गोलियां दागी जा रही है.
घेर लिया है पुलिस ने,
जनता के गुरिल्ला बेटों को.
'दघिची राय मारा गया'
पुलिस चिचियायी.
'पाल्टा' ने अट्टाहास मारा.
परन्तु गुरिल्लों ने हार नहीं मानी.

लड़ता गया.
लड़ता गया वह.
रायफल पर पकड़ और मजबूत हो गई है.
रायफल की नाल से चूता है लहू !
उसकी आवाज और खौफनाक हो उठी है !!

और अन्त में ...

(गोली से उड़ा दिये गये बेटे से
पूछती हैं उनकी मातायें)

किसलिए खायें हैं तुमने
अपने सीने पर गोलियां ?
क्या तुम्हें रास नहीं आई,
घर-आंगन और वो गलियां ?
तुम्हारे शरीर से निकली रक्त की लाल धरा,
किस तरफ चली बन परनाला ?

पुत्र का स्पंदनहीन शव,
मुस्कुरा उठता है कर इशारा.
'पूरब का आकाश रक्तिम,
क्या नहीं है मेरे रक्त की आभा !?!?!?'

कविता संग्रह

आईये -
मैं भी सुनाता हूँ एक कविता,
भूख से बिलबिलाते लोगों के
हिंसक प्रतिरोध का.

मैं कवि नहीं, भुक्तभोगी हूँ.
नहीं ! मैं तो निमित्त मात्र हूँ,
भूख से बिलबिलाते लोगों का
एक प्रतिनिधि मात्र हूँ...

प्रकाशक
प्रतिभा प्रकाशन
पटना-1